ORIGINAL RESEARCH PAPER

Hindi

KEY WORDS:

रीतिमुक्त कवि घनानंद का ऋतु वर्णन

संतोष

एम.ए., एम.फिल.(हिन्दी) यू.जी.सी.नैट

प्रकृति की लीलास्थली मधुमयी भारत–भूमि में ऋतुओं के अनुपम वैचित्रय कौन कवि – हृदय आकर्षित नहीं हुआ है? आदिकवि से लेकर आलोच्य कवि पन्त ने क्षण–क्षण परिवर्तित प्रकृति वेश की मधुरिम झांकी भारती के उपासकों के समक्ष प्रस्तुत की है। ऐसे वातावरण के सघन माधुर्य में मनोमयूरों का प्रतिपद नर्तन हो तो आश्चर्य क्या? यही कारण है कि संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश के कवियों ही नहीं अपितु हिन्दी के प्रकृति–प्रेमी कवियों ने भी ऋतु–माधुर्य का प्रकृतिगत एवं मानवगत चित्राण तन्मयता के साथ किया है। यह अस्वाभाविक है कि जिस देश के साहित्य में ऋतु–वर्णन की इतनी निर्मल धारा प्रवाहित हो रही हो, वहाँ कोई कवि पूर्णतः मौलिक होने का दावा करे। घनानंद जहाँ परम्परानुमोदित ऋतु–दृश्यों का भाव–विभोर होकर वर्णन करते हैं, वहीं उनकी सूक्ष्म निरीक्षण–पटु दृष्टि नूतन का आस्वादन विशिष्ट रूप में करती चलती है, अतः शास्त्रानुमोदित विषयों का ग्रहण भी पूर्णतः सहज है किन्तु नवनवोन्मेष की आकुलता कवि की सहचरी है और घनानंद के काव्य में ऋतु–वर्णन के ऐसे अनेक रमणीक स्थल छिपे पड़े हैं, जिन्हें देखने के लिए चक्षु स्वतः ही आकर्षित हो जाते हैं। यहाँ विशेष ध्यान देने की बात यह है कि मानव प्रकृति से असम्पृक्त नहीं रह सकता। कभी ऋतुओं का सौन्दर्य हृदय को उद्वेलित करता है और कभी हृदय का उद्वेलन ऋतु–सुषमा को निरखने के लिए बाध्य करता है। वातावरण के प्रति मानव की यह सजीवता आलोच्य–कवि में भरपूर है। भले ही कुछ नैतिकता की दुहाई देने वाले कुंठित व्यक्तित्व शृंगाराभिव्यंजन को वर्जित कहकर अपनी वर्जनाओं का परिचय दें, किन्तु अनुकूल वातावरण में हृदय का द्रवीभूत न होना न केवल अरसिकता का परिचय देना अपितु घोर कुंठाओं एवं मानसिक उत्तापों को आमंत्रित करना ही है।

मानव एवं मानवेतर प्रकृति के रचनात्मक तत्त्वों के प्रति सहज जागरूक रीतिकालीन कवि–हृदय ने ऋतु–वर्णन की जिन प्रवृत्तियों का प्रमुख रूप से अभिव्यंजन किया है, उनका विश्लेषण–विवेचन हम गत अध्याय में कर चुके हैं। प्रस्तुत अध्याय में आचार्य कवि देव और स्वच्छंद कवि घनानंद के ऋतु वर्णन का अन्वेषण किया जायेगा सर्वप्रथम यहाँ स्वच्छंद कवि घनानंद के ऋतु वर्णन को विभिन्न दृष्टिकोण से देखा जा रहा है।

ऋतुएँ प्रकृति का एक विशिष्ट अंग है। काव्य में ऋतुओं का सहभाव देखा गया है। घनानंद जोकि स्वच्छंद कवि हैं, प्रेम की पीर के कवि है उनके सहज स्वाभाविक काव्य में ऋतुओं का बरबस प्रयोग न होकर नैसर्गिक वर्णन मिलता है। अतः षटऋतुओं में पावस अर्थात् वर्षा ऋतु का बहुत स्थानों पर उल्लेख मिलता है उदाहरणार्थ–

घनानंद जीवनमूल सुजान की कौंधन हूँ न कहूँ दरसैं।
सु न जानियै धौ कित छाप रहे दृग चातिग प्रान तपें तरसैं।
बिन पावस तौर इन थ्यावस हो न सु क्यों करि ये अब सो परसैं।
बदरा बरसै रितु मैं छिरि कै नित ही अंखियां उघरी बरसैं।

घनानंद की निसिदिन विरह में बरसने वाली आँखों को वर्षा से जोड़कर बताना उनकी सहजवृति का ही एक रूप है। पावस की सरसता, आकर्षण एवं मोहकता ने घनानंद को बहुत अधिक प्रभावित किया है–

सावन रूप महारस प्यावन। ब्रज लोचन हरियारो सावन
मन भावन हित भूमि रिझावन। ब्रज मोहन है ब्रज सुख सावन।

विरह के उद्दीपन में वर्षागम का महत्त्व विशेष है। सावन की बूंदों से उद्दीप्त होने वाले विरह ताप का वर्णन प्रस्तुत छंद में किया गया है–

सावन आवन हेरि सखी मन भावन–आवन–चोप बिसेखी।
छार कहूं घनआनंद जान सम्हारि की ठौर लै भूलनि लेखी।
बूंदे लगैं सब अंग दगैं उलटीं गति आपने पापनि पेखी।
पौन सों जगति आगि सुनी ही पै पानि तें लागति आंखिन देखी।।

विरहिणी सखी से कहती है कि सावन आना जानकर ;'आगम' पाठ भी मिलता है, किंतु समध्वनि के कारण 'सावन' ही स्वीकार्य हैद्ध प्रिय के आने की आशा से ;मेरे हृदय मेंद्ध विशेष उत्साह बढ़ रहा है। ;यह उद्दीपन प्रवासी को भी उद्दीप्त करेगा उसे विश्वास हैद्ध किंतु सघन आनंद के बादल ;स्वरूप वे सुजानप्रियद्ध अन्यत्रा छाए हुए हैं ;सावन आ गया, बादल भी आ गए मगर आनंद के बादल, प्रिय नहीं आएद्ध मेरे लिए तो ऐसा लगता है कि संभाल के स्थान पर भी भूल ही लिखा हुआ है। ;'सम्हारि की ठौर भूलनि' में कई गूढ़ संकेत हैं। मेरी किसी भूल के परिणामस्वरूप रूठकर प्रिय चले गए। अब आ जाते तो मैं उस भूल का मार्जन करती, उसे संभालती, सुधारती, मगर सुधारने के इस अवसर पर भी भूल को, मैंने उनकी भूल को अपना भाग्यलेख मान लिया। अब सावन में आकर वे अपनी भूल सुधार सकते थे, किंतु नहीं आ रहे हैं। संभवतः मुझे भूल ही गए। संभवतः अब मेरे लिए भूल ही रह गई है।द्ध विरहिणी आगे कहती है कि मैं अपने ही ;किन्हीं पूर्वकृतद्ध पापों के कारण उल्टी गति ;प्रकृति में भी विषर्ययद्ध देख रही हूं। ;उल्टी गति यह है किद्ध बूंदों के लगने से मेरे अंग जल उठते हैं ;जबकि जल का स्पर्श शीतला होना चाहिएद्ध मैंने तो यह सुना था कि हवा से आग भड़क उठती है ;जागतिद्ध ;लगती हवा से भी नहीं हैद्ध, मगर यह देख रही हूं कि पानी से आग लग रही है ;उत्पन्न हो रही हैद्ध

बिरहा–रवि सों घट–व्योम तच्यौ बिजुरी सी खिवैं इकली छतियां।
हिय–सागर तें दृग–मेघ भरे उधरे बरसें दिन औ रतियां।
घनआनंद जान अनोखी दसा, न लखौं दई कैसे लिखौं पतियां।
नित सावन दीठि सु बैठक मैं टपकें बरुनी तिहि ओलतियां।।

घनानंद का रागपूरित हृदय अनायास अलंकारों को भी सहज अनुभूति का अंग बना लेता है। विरहिणी वर्षा के कहती है कि मेरे प्राणों में असह्य पीड़ा हो रही है। उसके उपचार का कोई उपाय नहीं है। आपको पत्रा भी नहीं लिख सकती क्योंकि ये नेत्र–रात दिन बरसते रहते हैं। आंसुओं की झड़ी के कारण कुछ दिखाई नहीं पड़ता। दृष्टि के आगे आंसू की झड़ी के अवरोध का चित्रा अत्यंत काव्यात्मक है।

घनानंद के काव्य में विरह की प्रधानता होने के कारण वर्षाऋतु का अश्रुओं के कई बार वर्णन हुआ है लेकिन वही खुशी के अवसर पर बसंत के आगमन पर ब्रज की हरीतिमा का, मनोरमता का भी वर्णन किया है। उदाहरणार्थ–

घुमंडि पराग लता तरू भोये
मधुरितु सौरभ–सोज–समों ये।
वन बसंत बरनत मन पूफल्यौ
लता लता झूलनि संग झूल्यौ।
खगन चुहक पिक मुहनक सुहाई।
बन मनमथ की पिफरी दुहाई।
मलाय पवन–आगम सुख–सार
रोचक महा सुदेस सुढ़ार।
बरसत पुहुप जुहुमि पर सोहत
बन छवि लखि ब्रजमोहन सोहत।।

संयोग के समय प्रकृति शुभ और कल्याणकारी लगती है लेकिन वहीं प्रकृति में वसंत ऋतु ने अपनी शोभा बिखेरी हो तो सौन्दर्य और भी बढ़ जाता है। घनानंद द्वारा प्रस्तुत वनराज वृंदावन की छवि घटा देखिए जहां पर कामदेव ने बन की सेना को ही बसंत के समीप लाकर खड़ा कर दिया है और वातावरण में मादकता बिखेर दी है।

प्रेम अमी–मकरंद–भरे–बहुरंग, प्रसूननि की रूचि–राची।
देखत आज बनै बनराजहि, रूप अनूपम ओप बिराजी।
राग–रची अनुराग–जची सुनि, है घनानंद बांसुरी बाजी।
मैंने महीप बसन्त समीप मतौ, करि कानन सैन है साजी।।

घनानंद के काव्य में जिस प्रकार बसंत ऋतु संयोग के समय अपनी छटा बिखेरती है। जिससे सारा वातावरण मनोहारी हो जाता है उसी प्रकार शरद ऋतु भी संयोग के पलों में वृ(ि करती है। वस्तुतः–

संयोगकाल में प्रकृति सुख सृष्टि तो करती ही है, अनेकानेक मदमाती बहारों की वृष्टि भी करती है। द्रुमलताओं की सघनता, उनका एक दूसरे को आलिंगन करना जिस 'अकथ्य को कथ्य' करता है, वह प्रेमियों का हृदय हार है और सरसों का सर्वस्व। कालिन्दी का कुसुमित तट, पूर्णचन्द्र की चाँदनी एवं शरदकालीन राका की रमणीयता प्रेमी मनों को रस सराबोर कर देती है तथा उनके लिए सर्वत्रा सुरभि विकीर्ण कर देती है–

देखि सुहाई सरद की जामिनी रस भीनी।
पूरन ससि प्राची उदै विहरनि रुचि कीनी।।
मोहन मदन गुपाल को वृन्दावन मोहै।
जमुना तट कुसमित महा अवनी मनि सोहै।।
जोति जगमगै द्रुमलता अति सघन सुहाये।
त्रिविधि पवन सुख में बहै कहिये सु कहाये।।

प्रकृति माधुरी का निम्नलिखित वर्णन भी देखिये कितना मार्मिक! कितना सुन्दर!! और कितना प्रभावोत्पादक!!! वर्षा की झड़ी लगना, समीप ही यमुना का प्रवाहित होना, चपला का चमकना, कदम्ब–वृक्षों का पुष्पित होना, भौर–झुण्डों का मंडराना आदि कितने मनोरम एवं हृदयाह्लादक प्राकृतिक दृश्य हैं, समस्त वातावरण की प्रेमोद्दीप्त हो उठता है।

संयोग के पलों में जहाँ वसंत, शरद जैसी ऋतुएं स्वयं वातावरण को उद्दीप्त करती हैं वहीं वियोग के क्षणों में पतझड़ जैसी ऋतु नायिका की विरह वेदना की पीड़ा, टीस को अभिव्यंजित करने में सफल रहती है। घनानंद जिनके जीवन की पूंजी ही विरह रहा है उन्होंने अपने विरह की अभिव्यक्ति के लिए पतझड़ को सहज–स्वाभाविक रूप में ग्रहण किया है उदाहरणार्थ–

किंसुक पुंज से पूफलि रहे सु, लगी उर दौ जु वियोग तिहारें।
मातो पिफरै न घिरै अवलानि पै, जान मनोज यौ डारत मारै।।
ह्वै अभिलाषनि–पात–निपातु कढ़े, हिय सूल उसासनि–डोर।
है पतझार बसन्त दुहूँ घन, आनंद एक ही बार हमारें।।

एक ही साथ बसंत और पतझड़ का जीवन में आना सुख दुख का संगम दिखाया है लेकिन किस प्रकार सुख से खिले जीवन में पतझड़ रूपी विरह आना जीवन के लिए कष्टदायी है। सर्वत्रा व्याप्त सुख पलभर में विरह या दुख की चपेट में अपनी मधुरता खोने लगता है प्रान्त, ग्रीष्म, शिशिर ऋतु वर्णन का घनानंद के काव्य में अभाव मिलता है।

वसंत ऋतु में कवि का ध्यान कोयल, भ्रमर, मयूर ने ही बार बार आकर्षित किया है। वृंदावन का दृश्य देखिए जहाँ घनानंद ने वसंत ऋतु का सुंदर वर्णन किया है और उस ऋतु में खग वृंद वातावरण को और भी मनोहर बना रहे हैं–

घुमड़ि पराग लता तरू भोये।
मधुरितु–सौरभ सोज समीपे।।
बन बसंत बरनत मन पूफल्यौ।
लता लता झूलनि संग झूल्यौ।।
खगन चुहक पिक मुहनक सुहाई।
बन मनगथ की पिफरि दुहाई।।
मलय पवन आगम सुख–सार।
रोचक महा सुदेस सुढ़ार।।
बरसन पुहुप पुहुमि पर सोहत।
बन छवि लखि ब्रज मोहन सोहत।।

यहाँ बसंत में पक्षियों का कलरव, कोयल की मधुर ध्वनि वातावरण को और सुहावना बना रही है।

घनानंद ने अपनी प्रेमिका सुजान की आंखों के लिए जिन पारंपरिक उपमानों का वर्णन किया है। उसके अन्तर्गत पशु पक्षियों का उल्लेख स्वयं मिल जाता है–

मीन–कंज–खंजन–कुरंग–मान–भंग करै,
सींचे घनआनंद खुले संकोच सो मठे।

नायिका के नेत्रों के लिए मछली, खंजन पक्षी, हिरण का वर्णन तद्युगीन संचरण के आधार पर संगत है। इसी क्रम में देखिए घनानंद ने नायिका की सुवाणी के लिए कोयल को आधार बनाया है।
बारनि भौंर–कुमार भजैं पुहपा

बलि हास विकासहि पूजति।
पाठ कियौ करै आठहु जाम,
सुबोलनि सीखिबै कोकिल कूजति।।

संयोग समय में प्रकृति प्रेमी युगल के संयोग–सानिध्य को सघन बनाती है, संभोग सुख को सुसम्पन्न करती है, प्रणय–जनित सुख को समृ(बनाती है, सहवास को सानन्दपूर्ण बनाया करती है, समस्त जीवन को सरसता प्रदान करती है, हृदय में उल्लास भरती है, रोम रोम को पुलकित करती है और अंग अंग को सप्राणता से सुशोभित रखती है। वृंदावन की बसंत बहार, कुँज कमनीयता, मधुर गुँजार एवं कोमल की मादक तान का मनोहारी चित्राण प्रेम–पयोधि में ज्वर लाने में पूर्ण सार्थक है, मन मंथन की महौषधि है–

वृंदावन मधि मधुरितु आई,
अति छवि पाइ सुहाई।
कुंज–कुंज सुख प्रेम मधुप गुंज,
कोकिल सुर की छाई।।
बिलसत है अपनी सचि संपति,
दंपति विनोद अधिकाई।।

प्रकृति के अभिन्न इन पशु–पक्षियों का संयोग शृंगार में जहां योगदान रहता है, वहीं वियोग के पलों में उद्दीपन का कार्य करते है, उदाहरणार्थ विरह में कोयल की कूक, मोर की पिहु, चातक की हूक कानों को कष्ट देती है–

कारी कूर कोकिला कहां बैर काढतिरि,
कूकी कूकी अबहीं करेजो बिन कोरि लै।
पैड़ें परे पापी ये कला पी निस धौंस ज्योंही,
चातक, घातक त्यौं ही तूहू कान पफोरि लै।
आनंद के घन प्रान जीवन सुजान बिना,
जानि कै अकेली सब घेरौ दल जोरि लै।
जौ लौ करै आवन विनोद बरसावन वे
तौ लौ कू डरारे ब्रज मोर घन घोरि लै।।

अतः ऋतु तो मनमोहक, आनंददायी है, उद्दीपनकारी है लेकिन विरह के समय इस मनमोहक ऋतु को भी कष्टकारी दिखाया है और उसे पक्षियों की मधुर तान ही चुभनमयी बना रही है।

वर्षा ऋतु के समय चातक पक्षी की इच्छा का कवि घनांनद ने बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया है कि अपनी प्रेमिका सुजान की बादल तथा स्वयं की चातक रूपी प्रतीकात्मकता बांधकर सुंदर बिंब खींचा है।

घनानंद जीवन मूल सुजान की कौंधन हूँ न कहूँ दरसै।
सु न जानियै धौं कित छाय रहे दृग चातिग प्रान तपै तरसैं।
बिन पावस तौ इन थ्यावस हो न सु क्यौं करि ये अब सो परसैं।
बदरा बरसैं रितु मैं घिरि कै नित ही अंखियां उघरी बरसैं।।

अर्थात् सुजान रूपी पावक के बिना भी घनानंद रूपी चातक के प्राण तड़ रहे हैं, आंखों से निरंतर अश्रुधार बह रही है सुजान का प्रेम बरसे न बरसे आंखें दर्शन के वियोग में निरंतर बरस रही है।

संयोग समय में प्रकृति प्रेमी युगल के संयोग सानिध्य को सघन बनाती है, संभोग सुख को सुसम्पन्न करती है, प्रणय–जनित सूख को समृ(बनाती है, सहवास को सर्वानन्दपूर्ण बनाया करती है, समस्त जीवन की सरसता प्रदान करती है, मिलोत्कण्ठा को तीव्रता प्रदान करती है, रोम–रोम को पृथकित करती है और अंग–अंग को सप्राणता से सुशोभित रखती है।

वृन्दावन की बसन्त–बहार, कुंज–कमनीयता, मधुप गुंजार एवं कोयल की मादक–तान का मनोहारी चित्राण प्रेम पयोधि में ज्वार लाने में पूर्ण समर्थ है, मन–मंथन की महौषधि है–

वृन्दावन मधि मधुरितु आई, अति छवि पाई सुहाई।
कुंज–कुंज सुख प्रेम मधुप गुंज, कोकिल सुर की छाई।।
बिलसत है अपन सचि संपति, दंपति विनोद अधिकाई।।

संयोग काल में प्रकृति सुख सृष्टि तो करती ही है, अनेकानेक मदमाती बहारों की भी वृष्टि करती है। शरदकालीन पूर्णिमा की रात प्रेमी मनों में रस का संचार कर देती है–

देखी सुहाई सरद की जामिनी रस भीनी।
पूरन ससि प्राची उदै बिहरनि रूचि कीनी।।
मोहन मदन गुपाल को वृन्दावन मोहे।
जमुना तट कुसमित महा अवनी मनि सो है।।
जोति जगमगै द्रुमलता अति सघन सुहाये।
त्रिविधि पवन सुख में बेहे कहियै सु कहाये।।

प्रकृति की मनोरम ऋतु शद का बड़ा ही सुंदर, सजीव चित्राण हुआ है। मनोरम दृश्य हृदय–हारक है। वातावरण प्रेमोद्दीप्त करने में सक्षम है। वर्षा स्वयं भी ब्रज में आकर धन्य हो गई है और इतने पर कृष्ण अपनी मुरली से मल्हार राग बजा रहे हैं। रोम रोम प्रेम से पुलकित हुए बिना नहीं रहता है।

मधुर प्रेम पावस के गीत।।
रस निधि राधा मोहन मीत।।
अमित लतागन फूफलनि छाये।
सोभित बन के सदन सुहाये।।
फूफले सरस कदम्बन पुंज।
महा मनोहर मधुकर पुंज।।
झुरमुट झूला बगर बगर है।
सावन की सुख डगर डगर है।।

बनराज वृन्दावन की छवि–छटा देखिये जहां पर कामदेव ने बन की सेना को ही बसन्त के समीप लाकर खड़ा कर दिया है और सारे वातावरण में मादकता बिखेर दी है–

प्रेम अमी–मकरंद–भरे बहुरंग, प्रसूननि की रूचि–राजी।
देखत आज बनै बनराजहि, रूप अनूपम ओप बिराजी।।
राग–रची अनुराग–जची सुनि, हे घनआनन्द बांसुरी बाजी।
मैन महीप बसन्त समीप मतौ, करि कानन सैन है साजी।।

इस प्रकार संयोग–समय में प्रकृति अपनी माधुरी से समस्त वातावरण को मन–मुग्ध करती है, मिलनोत्कण्ठा को सबल करती है, शारीरिक सामीप्य कामना को प्रबल करती है, कण–कण में मादकता सम्प्रेषित करती और सर्वत्रा सुख की सृष्टि करती है।

वियोग उद्दीपन के रूप में घनआनन्द ने प्रकृति–वर्णन अत्यधिक सरसता एवं मार्मिकता के साथ किया है जो सर्वथा उचित भी है, क्योंकि घनआनन्द का समस्त प्रणय काव्य विरह प्रधान है, जिसमें प्रकृति को परम्परागत तथा अभिनव रूप से वियोगीजनों की अहर्निशि व्याकुलता उद्दीप्त करते हुए वर्णित किया गया है। समय परिवर्तन के साथ प्रकृति की प्रवृत्ति में भी परिवर्तन कवि ने अत्यन्त ही तन्मयता एवं तल्लीनता के साथ प्रदर्शित किया है। संयोग समय के सुख–स्रष्टा प्राकृतिक उपादान अब वेदनाओं का उपहार देने लगे हैं, विरह–व्यथा में वृ(करने लगे हैं, वियोग–व्याकुलता को विकराल बनाने लगे हैं, प्रेम–पीड़ा को प्रशस्तता प्रदान करने लगे हैं, चिन्ताओं में अभिवृ(कर उनकी चिंता तैयार करने लगे है, आशंकाओं को आश्वस्त करने लगे हैं, रोम रोम में विरह विषमता को प्रविष्ट करने लगे हैं और समस्त वातावरण में विरह विषय विकीर्ण करने लगे हैं। जिन प्राकृतिक उपकरणों ने विरही घन–आनन्द या विरहिणी गोपिकाओं को आत्यान्तिक आकुलता, विषम–व्यथा तथा अकथनीय पीड़ा पहुंचाई है, उनमें लहकती हुई, पुरवैया, भटकते हुए बादल, चमकती हुई चपला, वर्षा प्रसूनों की सुगन्धि, कलापियों की कूक, टूटती हुई उल्काएं, चतुर्दिक आच्छादित घन–घटाएं, बिजली, कौंध, शीतल समीर, प्यासे चातक, चन्द्रमा विहीन अन्धाकाश, उन्मत्त मयूर, विहंसती–विद्युत तथा गरजते हुए बलाहक विशेष रूप से उल्लेख्य है। यथा–

लहकि लहकि आवै ज्यौं पुरबाई पौन,
दहकि दहकि त्यौं त्यौं तन तांवर तचै।
बहकि बहकि जात बदरा बिलोके हियौं,
गहकि गहकि गहबरनि गरें मचै।।
चहकि चहकि डारै चपला चखनि चाहें,
कैसे घनआनंद सुजान बिन ज्यों बचै।
महकि महकि मारै पावस–प्रसून बास,
त्रासिन उसास दैया कौ लौं रहियै अचै।।

मनभावन सावन की आगमन भी प्रियतम के अभाव में व्याकुल करता है। सावन की वर्षा की रिम–झिम बूंदे वियोगिनी के शरीर पर पड़कर आग की लपटें उठा देती हैं–

सावन आवन हेरि सखी, मन भावन चोर बिसेखी
धाये कहूँ घनआनन्द ज्ञान। सम्हारि की ठौर नै भूलन लेखी।।
बूंदे लगें सब अंग दगैं, उलटी गति आपनि पापनि पेखी।
पौन सौं लागति आगिसुनी ही, पैं पानी तै लागति आँखिन देखी।।

सुधा स्त्रावित करने वाला शशि विरहिणी को विष प्रदान करता है, संयोगकालीन अल्पकालिक रात्रि वियोग में अनन्त बन गई है, काटे नहीं कटती है–

कहा कहये सजनी रजनी–गति, चन्द कढ़ै कि जियै गहि काढ़ै।।
अमी निधि पै विषधार स्त्रावै, हिय ज्योति जगाय कै अंगनि डाढ़ै।।
सु या पति–संग न जानति है, घनआनन्द जान बिछोह की गाढ़ै।
वियोग में बैरिन बाढ़ति जैसी, कछू न घटै, जू संजोग हूं बाढ़ै।।

बसन्तकालीन रात्रि–सुषमा विरहिणी को विकराल काल के समान भयंकर लगती है। मलयानिल का संस्पर्श शीतलता प्रदान करने की अपेक्षा वियोगिनी को दग्ध करता है, दरद से दामन भरता है तथा अपने आचरण वैषम्य से प्रताड़ित करता है–

बासर बसन्त के अनन्त है कै अन्त लेत,
ऐसे दिन पारै जु निहारै जिय राति है।
लतनि की फूफलनि, तमालनि पै झूलनि कों,
हेरि हेरि नई नई भाँति पियराति है।।
प्यारे घनआनन्द सुजान सुनौं बाल–दसा,
चन्दन पवन तैं पजरि सियराति है।
औसर सम्हारौ न तौ अनआयबे के संग,
दूर देश जायबे कों प्यारी नियराति है।।

अभिव्यंजना के आचार्य घनआनन्द प्रकृति से दुखोद्दीपन का कार्य सपफलतापूर्वक सम्पन्न कराने के प्रकृति वर्णन को अभिनव मार्ग से ले जाने में भी नहीं सकुचाये हैं। ऐसे वर्णन स्थलों में कवि को स्वच्छन्द प्रवृत्ति तो परिलक्षित होकर साकार हो ही उठी है, वियोग–व्याकुलता का आतिश य भी उपफन उठा है। यथा – चपला का दाह, चातक–स्वर की कातरता, चतुर्दिक भ्रमित पवन की अस्थिरता एवं मेघों की वर्षण शक्ति सभी वियोगी से गृहीत की गई है। इस प्रकार वियोगी की विरह–व्यथा को प्रकृति के समस्त उपकरणों में भर दिया है। ऐसे वर्णनों में प्रकृति–वर्णन उद्दीपन रूप में तो नहीं हुआ है परन्तु वियोगोद्दीपन पूरी–पूरी तरह से हुआ है–

कारी कूर कोकिला कहां को बैर काढ़तिरी,
कूकि कूकि अबहीं करेजो किन कोरि लै।
पैड़ें परे पापी ये कलापी निस धौंस ज्योंही,

चातक, घातक त्यौं ही वह कान पफोरि लै।।
आनन्द के घन प्रान–जीवन सुजान बिना,
जानि कै अकेली सब वेरौ दल जोरि लै।
जौं लौं करै आवन विनोद बरसावन वै,
तौ लौं रे डरारे बजमारे घन कोरि लै।।

निश्कर्श

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि यह सही है कि ऋतुओं के परिवर्तन के साथ साथ मानव मन की वृत्ति भी परिवर्तनशील रहती है। घनानंद के काव्य से स्पष्ट हो जाता है कि ऋतु परिवर्तन का चाहे आम जन जीवन पर जैसा भी असर रहा हो लेकिन नायक नायिका के हृदयों पर ऋतुओं का प्रभाव संयोग या वियोग की स्थिति के आधार पर ही निर्भर होता है। संयोग के क्षण में जो ऋतु जितनी मनोहारी, उद्दीपनकारी होती है वही वियोग के क्षण में उतनी ही कष्टकारी और दाहक हो जाती है।

प्रकृति सुन्दरी अनादिकाल से ही मानव की अनन्य सहचरी रही है। सुख में आनन्द विभोर होकर प्रकृति ने मानव के स्वर में मिलाकर उल्लास के गीत गाये हैं तो दुख–दलित होने पर मानव सहानुभूति एवं समवेदना में निरन्तर आंसू भी बहाये हैं। कभी उदासीन होकर तटस्थ भी बन गई है, कभी विमुख होकर दारुण दुख का कारण भी बन गई है। कभी मानव प्रेम–पक्ष को प्रशस्त किया है, तो कभी बाम होकर अवरु(किया। कभी संयोग सुख में सहयोगी बनकर सोने में सुगन्ध का काम किया है, कभी वियोग में विपक्षिणी बनकर आग में घी डालने का क्रूर कार्य भी किया है। परिणामस्वरूप मानव भी अपनी इस शाश्वत एवं दुनिवार्य जीवन सांगिनी प्रकृति के प्रति उतना ही आकर्षित रहा है, कृतज्ञता–ज्ञापक रहा है और उसे विविध रूपों मं सजाता–संवारता रहा है। क्रमशः स्थापत्यकला, चित्राकला तथा काव्यकला में उसके सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप को स्थायित्व प्रदान कर अमरत्व प्रदान करने का अविराम अथक शारीरिक एवं मानसिक श्रम करता रहा है। इस प्रकार प्रकृति प्रेमी मानव ने प्रकृति को विविध रूपों में, विभिन्न दृष्टिकोणों में देखने, परखने एवं समझने का भरसक प्रयत्न किया है और अपनी स्वानुभूत–अभिव्यक्ति में उसे महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है। प्रकृति रमणी का जीवन्त–रूप–वैविध्य मानव–अभिव्यक्ति के अनन्त असीम एवं अजस्र काव्य कोष में सहज ही देखा जा सकता है।